पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

(३३)

कलकत्ता
९-१२-१९६२

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... धर्मस्नेह।

पत्र ता.२२-११का यथा समय मिला। 'अस्थिरतासे देवादिक प्रत्येके परिणामोंमें खेद वर्तते व अखण्ड सद्भावरूप परिणमन होते हुए धर्मीजीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये स्वरूप दृढीभूत करनेके आशयकी प्रवृत्ति मुख्य तौरसे होती रहती है, ऐसा दिखता है' इस पर विशेष स्पष्टीकरण चाहा सो निम्न है :-

१. स्वरूपकी दृढ़ता देवादिक प्रत्येकी वृत्ति से निश्चय ही नहीं होती।

२. मनआश्रित (विचारपूर्वक) मान्यतासे यथार्थ अखण्डआश्रित सहज आंशिकवृत्तिका सद्भाव (उद्भव) नहीं हो सकता।

३. त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व, इस आश्रित परिणमी हुई आंशिक शुद्धवृत्ति व देवादिक प्रत्येकी आंशिक बाह्य वृत्ति—तीनों अंशोंका एक ही समय धर्मीको अनुभव होता है, जिसमें मुख्य-गौणका प्रश्न नहीं।

४. स्वके मापसे अन्यका माप किया जाता है। 'मैं' त्रिकाली ही हूँ, इस अनुभवमें परिणाम मात्र गौण है, चाहे बुद्धिपूर्वक हो या अबुद्धिपूर्वक। ऐसे धर्मीको कभी परिणामकी मुख्यता नहीं होती। अतः उसे अन्य धर्मी जीवमें कभी परिणामकी मुख्यता नहीं दिखाई देती; जैसे कि मात्र परिणाम देखनेवालेको प्रवृत्तिकी मुख्यता दिखती है।

५. धर्मी, अधर्मीके भी त्रिकाली व वर्तमान दोनोंको एक साथ देखता है। त्रिकालीका अभान होनेसे अधर्मीको परिणाम मात्रमें एकत्व होता है, इसका धर्मीको ज्ञान रहता है।

६. वृत्ति अपेक्षा त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीको सहज ही इस मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है, वर्तती है; चाहे बाह्यांशमें बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति हो।

७. त्रिकाली तो प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप परिणामका ही कर्ता नहीं है। परिणामका कर्ता परिणाम ही है, यह अपेक्षा भी अपनी चर्चामें आई ही थी।...

- धर्मस्नेही
सोगानी

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (मार्च-२०१९) का शुल्क श्रीमति वंदनाबहेन रणधीरभाई घोषाल, कोलकाटाके नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६ः अंक-२५६, वर्ष-२३, मार्च-२०१९

आषाढ़ शुक्ल १३, गुरुवार, दि. ३०-६-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-६२, प्रवचन-२२

६२वीं गाथा-

अप्पई अप्पु मुणंदयहँ कि णेहा फलु होइ।
केवल-णाणु वि परिणवइ सासय-सुक्खु लहेइ।।६२।।

बहुत सार में सार बात है। योगसार है न? आत्मा को आत्मा के द्वारा.. पाठ में ऐसा शब्द है। '**अप्पई अप्पु**'-ऐसा है। आत्मा को... आत्मा कौन है, उसे पहले इसे जानना चाहिए न? आत्मा ज्ञान, आनन्द का रूप, वह आत्मा है। उसमें पुण्य-पाप का विकार, शरीर, कर्म- वह आत्मा नहीं है।

मुमुक्षु :- एकान्त नहीं हो जाता?

उत्तर :- एकान्त ही है। आत्मा में विकार बिल्कुल नहीं। वस्तु में विकार है? द्रव्य में; वस्तु—आत्मा जिसे कहते हैं, (उसमें विकार नहीं है।) वह विकार तो आस्रवतत्त्व है; कर्म, अजीवतत्त्व है; शरीर, अजीवतत्त्व है; वरना नौ तत्त्व सिद्ध किस प्रकार होंगे? आस्रव है, वह पुण्य-पाप के विकार, व्यवहार, त्रिकाल-स्वभाव की अपेक्षा से, वह वस्तु में नहीं है तो इस वस्तु में क्या है? ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता आदि अनन्त शुद्ध गुण है। ऐसे '**आत्मा को आत्मा द्वारा..**' है न? '**अप्पई अप्पु आत्मा को आत्मा द्वारा...**' भावार्थ में भी यह कहा है, देखो! '**आत्मा के द्वारा आत्मा का अनुभव करना, वह मोक्षमार्ग है।**' उसे ही मोक्षमार्ग कहते हैं; उसे कहते हैं और वह है।

आत्मा चैतन्यस्वरूप (है), पुण्य-पाप के राग से सर्वथा निराला है-ऐसा आत्मा अन्तर स्वरूप में उसे दृष्टि में लेकर आत्मा के द्वारा अनुभव करना अर्थात् निर्विकल्पदशा द्वारा उसका अनुभव करना। योगसार है न? आत्मा को आत्मा के द्वारा, यह योगसार है। आत्मा द्वारा... चैतन्य महासत्ता वस्तु है। चैतन्य महासत्ता अनादि-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द सम्पन्न वस्तु है। विकार और शरीर, कर्म, ये इसमें नहीं हैं, वे तो परचीज हैं। ऐसे आत्मा द्वारा आत्मा का अनुभव करना, वह मोक्षमार्ग है। बहुत संक्षिप्त और सार में सार बात है।

भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्दधाम (है)। उसे आत्मा द्वारा अर्थात् उसकी स्वभावकी परिणति—विकाररहित द्वारा, विकाररहित अवस्था द्वारा अनुभव करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? '**अनुभव करना, वह मोक्षमार्ग है।**'

पाठ में तो यह है न? '**क्या फल नहीं मिलता?**' ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अपना निजस्वरूप शुद्ध आनन्द, उसके द्वारा उसका अनुभव करने से क्या फल नहीं होगा? क्या फल नहीं होगा? बीच में मति-श्रुतज्ञान की विशेषता प्रगटे, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हो, क्रम-क्रम से आगे बढते हुए अनुभव करने से केवलज्ञान होता है। क्या फल नहीं होता? कहो, इसमें कुछ कारण, यह संहनन होवे तो हो और यह राग, व्यवहार, विकल्प होवे तो हो, यह बात है या नहीं? दूसरे शास्त्र में ऐसा निमित्तपने का ज्ञान कराया है। उस समय दूसरी चीज

पृथक् है, राग की मन्दता, संहनन आदि का ज्ञान कराया है कि एक ऐसी चीज है परन्तु साधन तो स्वभाव का स्वभाव द्वारा ही उसकी मुक्ति का साधन है, दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया?

वीतरागस्वभावी आत्मा, सर्वज्ञस्वभावी आत्मा या वीतरागस्वभावी आत्मा, उसे वीतरागी पर्याय द्वारा ही अनुभव हो सकता है अर्थात् निश्चय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह वीतरागी दशा है, उस वीतरागी दशा द्वारा आत्मा का अनुभव होता है। समझ में आया?

'**जब तक केवलज्ञान नहीं होता, तब तक यह आत्मज्ञानी ध्यान के समय चार फल पाता है।**' यह जरा थोड़ी बात की है। '**आत्मिकसुख का वेदन होता है।**' यह केवलज्ञान फल पाता है-ऐसा कहा है न! बीच में क्या फल नहीं पाता? सब पाता है। आत्मा अपने निजस्वरूप-परमानन्द उसका रूप, उसका अन्तर के आनन्द द्वारा अनुभव करने से उसे पहले तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है। पहला फल तो अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है। कहो, समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन... स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द नित्यानन्दस्वरूप वस्तु है, उसे अन्तर की निर्मल-विकाररहित दशा द्वारा उसे आत्मा की सन्मुखता की दृष्टि से अनुभव करने पर पहले तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है। आत्मा के अनुभव का पहला फल आनन्द है। हैं?

मुमुक्षु :- उससे बाहर में सुख का ढेर होता है?

उत्तर :- बाहर में सुख का ढेर था कब? धूल में.. सुख का ढेर तो यह स्वयं है, अतीन्द्रिय आनन्द का ढेर, ढेर। समझें न? ढेर को क्या कहते हैं? ढेर.. अतीन्द्रिय आनन्द का ढेर आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्दपुंज है, अतीन्द्रिय आनन्द, सिद्ध को जो आनन्द है ऐसे ही अतीन्द्रिय आनन्द का पुंज आत्मा है।

यहाँ तो सीधी बात है न! योगीन्द्रदेव योगसार (कहते हैं)। योगीन्द्रदेव हैं न? तो योगसार (कहा)। स्वयं का नाम योगीन्द्र है। योगीन्द्रदेव का यह योगसार है-ऐसा। धर्मी आत्मा सम्यग्दर्शन से लेकर अपने चैतन्य शुद्ध आनन्द के अन्तर्मुख का अनुभव करने पर उसे क्या फल नहीं होता? तो कहते हैं कि पहले तो उसे आनन्द का फल होता है। समझ में आया? '**वह अतीन्द्रिय सुख अरहन्त और सिद्ध परमात्मा के सुख की जाति का है।**' लो, जो अरहन्त सिद्ध परमात्मा को अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसा ही अतीन्द्रिय (आनन्द) धर्मी को (आता है)। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... सम्यग्दर्शन ज्ञान और स्वरूपाचरण-ये तीनों पहले होते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, आत्मा का अनुभव होने पर ये तीनों पहले होते हैं। अद्भुत बात भाई!

वस्तु अन्दर चैतन्य महाप्रभु, उसकी महान प्रभुता के निर्विकार द्वारा उसे प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्वरूपाचरण द्वारा अनुभव करते हुए उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में उसे आनन्द की दशा का अनुभव होता है। समझ में आया? कि जो आनन्द अरहन्त और सिद्ध को पूर्ण आनन्द है, उसी में का अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का नमूना प्रगट होता है। आहाहा..! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मा के अनुभव से जो आनन्द होता है, वह अरहन्त और सिद्ध की आनन्द की जाति का आनन्द है। आहाहा..! और उस आनन्द के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन को भी सड़ा हुआ तिनका जैसा दिखता है। समझ में आया? छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, राजपाट, ऐसे बत्तीस हजार

मुकुटबद्ध राजा, खम्मा अन्नदाता (कहते हों) खम्मा... खम्मा... की पुकार ऐसे करोड़ों अरबों में (होती हो), वह नहीं वे... नहीं, वह आनन्द मेरा मेरे पास है। उस आनन्द की गन्ध नहीं मिलेगी।

धर्मी जीव को गृहस्थाश्रम में भी.. यह बाद में आगे कहेंगे। गृहस्थाश्रम और मुनि दोनों आत्मा में बसते हैं। आगे ६५वीं गाथा में कहेंगे, ६५में। गृहस्थाश्रम में समकिती हो या मुनि होकर आत्मज्ञानी मुनि हो, दोनों को शुरुआत होने पर आत्मा के आनन्द का वेदन (होता है) क्योंकि समस्त शक्तियों की व्यक्तता पहले ही अनुभव काल में उन्हें प्रगट होती है। समझ में आया? '**उवगोऊ**' आता है न? निर्जरा अधिकार में। '**उवगोऊ सर्वधर्माणं**' सर्व धर्म का अर्थ ही किया है, सर्व गुणों की शक्तियों का बढ़ना। एक सिद्धान्त ही वहाँ बस है। भगवान आत्मा अनन्त... अनन्त.. बेहद संख्या से गुणों का समूह है। बेहद अनन्त गुण का संख्या से समूह है। उसके गुण के भाव की अचिन्त्यता अपरिमितता तो अपार है परन्तु उसकी गुण की संख्या है, (वह भी) अनन्त अचिन्त्य अपार होने पर... अनुभव होने पर उन अनन्त गुणों की शक्ति की वृद्धि, शक्ति में से पर्याय में व्यक्ति, अनन्त गुणों की पर्याय की शुद्धि की वृद्धि सम्यग्दर्शन होने पर समय-समय होती है। आहाहा..! समझ में आया?

सम्पूर्ण आत्मा पूर्ण जहाँ अनन्त परमात्मा जिसके गर्भ में, ध्रुव में, पेट में बसते हैं। ऐसे परमात्मा, ऐसा परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा को अन्तर्मुख, अन्तर्मुख ऐसी दृष्टि और ज्ञान द्वारा अन्तर का वेदन और अनुभव (करने पर) क्या फल नहीं होगा? कहते हैं। ओहोहो..! अनन्त गुणों की शक्ति का सत्त्व, उसका अनुभव करने पर एक समय में अनन्त शक्ति की व्यक्तता का अंश उस काल में प्रगट होता है। उसमें आनन्द का मुख्यपना है। समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु :- ऐसा कहकर क्या बतलाना है?

उत्तर :- कहते हैं न यह। यह बतलाने का क्या कहा? परन्तु आँखे किसकी? आँखें किसकी देखे? देख! यह लाख का हीरा! देखो! इसके एक-एक पासे की, एक-एक की इतनी क़ीमत! देखो! उसमें पीली गन्ध नहीं, देखो! सफेदाई! यह कौन देखता है? आँखेंवाला या आँखें बिना का? यह आँखेवाला न? यह आँखें उसे कहते हैं, अन्य को आँखे कहा ही नहीं जाता। समझ में आया?

जो वीर्य, आत्मा के स्वरूप की रचना करे, उसे ही वीर्य कहते हैं। क्या कहा? उसे ही वीर्य कहते हैं और जो ज्ञान आत्मा को ज्ञेय बनावे, उसे ही ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? अगम्य को गम्य करनेवाली वस्तु है। भाई! इसे मोक्षमार्ग... स्वयं ही महा भगवान ऐसे मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय (होवे)-ऐसी तो असंख्य जो निर्मल पर्याय होती है, वह तो सब आत्मा में पड़ी है। क्या कहा? मोक्षमार्ग की पर्याय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से प्रगट होने पर पूर्ण केवल (ज्ञान) होवे, उसमें असंख्य प्रकार की मोक्षमार्ग की पर्याय सब भगवान आत्मा में अन्तर में-ध्रुव में पड़ी है और अनन्त केवलज्ञान जो फल प्राप्त हो-ऐसा अनन्त केवलज्ञानादि, अनन्त सिद्ध की पर्यायें (उसके) पेट में पड़ी है। समझ में आया?

मोक्षमार्ग का साधकपना असंख्य समय में ही होता है और उसका फल अनन्त समय रहता है। क्या कहा, समझ में आया? इसीलिए इसमें शब्द पड़ा है-'**अप्पई अप्प मुणंदयहँ**', '**अप्पई अप्पु मुणंदयहँ कि णेहा फलु होइ। केवल-णाणु वि परिणवइ**' जहाँ केवलज्ञान भी परिणमे, ऐसा कहते हैं और शाश्वत सुख को पावे। ओहोहो..! एक ही श्लोक में (सब भर दिया है)। भगवान आत्मा की जाति को अनुभव करते हुए राग, दया, दान, विकल्प आदि पर के साथ कुछ धर्म का सम्बन्ध है ही नहीं। समझ में आया? यह योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त वन में बसते थे। वे पुकार करते हैं कि अरे! '**अप्पई अप्पु मुणंदयहँ कि णेहा फलु होइ।**' भगवान! तेरी जाति के स्वरूप की जाति, सिद्ध की जाति का आत्मा, ऐसे आत्मा की जाति का अनुभव करने से क्या फल नहीं होगा? समझ में आया? प्रत्यक्ष प्रतीति, ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, विभूता आदि अनेक शक्तियों की पर्याय में प्रगटता अनुभव करने से होती है। समझ में आया?

'**दूसरा फल यह है कि अन्तराय कर्म का क्षयोपशम बढ़ने से आत्मबल बढ़ता है...**' देखो!

वीर्य की रचना... वीर्य—आत्मबल भगवान आत्मा के सन्मुख ढला और अनुभव में वीर्य झुका—इससे उस वीर्य में ऐसी स्वरूप रचना की कि वीर्य में उल्लास आया, वीर्य में उल्लास आया कि मैं अब काम पूरा कर सकूँगा। समझ में आया? भगवान आत्मा स्वयं को निर्विकल्प दृष्टि और ज्ञान द्वारा अनुभव करने पर एक तो मुख्यरूप से आनन्द का वेदन हुआ और वीर्य की उत्साहता, वीर्य का उत्साह, उत्साह, प्रसन्नता, प्रसन्नता, प्रमोदता (आयी), वह वीर्य उछला, पूर्ण केवल (दशा के) कारण ऐसा उत्साहित वीर्य उसे जगे, वह उसका फल है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह किसकी बात चलती है? मोक्ष की? आत्मा की। मोक्ष तो उसका फल है। आहाहा..!

यह खेत कोई कच्चा नहीं कि जिसके खेत में साधारण घास-फूस पके, यह तो असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का खेत, उसका अनुभव करने पर क्या फल नहीं होगा? कहते हैं। क्या फल नहीं होगा? आहाहा..!ह्न आचार्य देखो न! उछला है न वीर्य! उल्लसित, उल्लसित वीर्य! उल्लसित वीर्यवान वह आत्मा के मोक्ष के मार्ग का अधिकारी है। समझ में आया? पामर वीर्य का (धारक) यह आत्मा के मोक्षमार्ग का अधिकारी नहीं है। समझ में आया?

'**अन्तराय कर्म का क्षयोपशम (उघाड़) बढने से आत्मबल बढ़ता है...**' देखो! इसमें अन्तराय कर्म डाला है। यहाँ तो आत्मा में जो अनन्त वीर्य—बल है, उसका यहाँ अनुभव होने पर वीर्य की व्यक्तता इतनी जगती है कि उस वीर्य में उल्लसितता (होती है कि) इस वीर्य से तो मैं केवलज्ञान लेनेवाला हूँ—ऐसा उल्लसित होता है। समझ में आया? अरे..! ऐसा वह कैसा होगा? ए..ई..! किसकी बात होगी यह? यह दुनिया में भी कहते हैं कि 'धन रले (कमाये) तो ढगला थाय, पंड रले (कमाये) तो पेट भराय' ऐसा कहते हैं न? बातें करते हैं, हाँ! पंड रले (कमाये) तो कितना हो? पेट मुश्किल से भरे। जहाँ धन पाँच-पचास लाख, दस लाख, करोड़, दिन की पाँच-पाँच हजार, दस हजार की आमदनी (होती है)। हैं?

मुमुक्षु :- यही सुख की धारा है।

उत्तर :- यही सुख की धारा है, मूढ़ को। आहाहा..! आहाहा..!

मुमुक्षु :- उल्लसित वीर्य में होता क्या होगा?

उत्तर :- हैं? उल्लसित वीर्य अर्थात् जो वीर्य शक्तिरूप है, उसका अनुभव होने पर व्यक्त के वीर्य में जागृति होती है कि यह वीर्य उछला, वह केवलज्ञान को लेगा। उसका फल-यह सर्वज्ञपद को लेनेवाला मेरा वीर्य है। मैं आत्मा सर्वज्ञपद को लेनेवाला हूँ। सिद्धपद को अल्पकाल में शीघ्रता से लेनेवाला हूँ-ऐसा वह वीर्य जगता है। समझ में आया? ऐसा नहीं होता कि अरेरे..! क्या होगा? कितने भव करने पड़ेंगे? कहाँ होगा? बीच में पड़ेगा? अरे..! चल.. चल..! भगवान वह द्रव्यस्वरूप कभी पड़ता होगा? द्रव्य स्वरूप पड़ जाये तो अद्रव्य हो जायेगा।

मुमुक्षु :- अभी तो वीर्य की बात है न?

उत्तर :- नहीं, यह द्रव्य की बात है। वह द्रव्य स्वयं जो वीर्य का पिण्ड है, वह कभी कहीं अद्रव्य होता है? ऐसा जहाँ प्रतीति और अनुभव में वीर्य आया कि यह द्रव्य ऐसा है, उसका वीर्य जगा, वह फिर गिरेगा? समझ में आया? वह क्षयोपशम होवे तो क्षायिक ले और क्षायिक होवे तो शुक्लध्यान ले और शुक्लध्यान होवे तो केवलज्ञान ले। 'झपट मारे तलवार'-ऐसा कहीं आता है। कषाय की झपट मारे-ऐसा सब कहीं सज्झाय में आता है। कहो!

'**जिससे प्रत्येक कार्य करने के लिये अन्तरंग में उत्साह और पुरुषार्थ बढ़ जाता है।**' देखो! ठीक लिखा है यहाँ। आत्मा के शुद्ध भगवान स्वभाव को, आत्मा के शुद्ध महिमावन्त भगवान स्वभाव को अनुभव करने पर वीर्य में.. समझ में आया? अनेक प्रकार का उत्साह, पुरुषार्थ बढ़ने से अन्दर क्या काम नहीं करे? ज्ञान की वृद्धि, श्रद्धा की शुद्धता, आनन्द की वृद्धि, चारित्र की स्थिरता, स्वच्छता बढ़ने पर प्रभुता की उग्रता (होती है)। समझ में आया? वह पामर नहीं। उस भगवान प्रभु को जिसने स्पर्श किया, उसकी पर्याय में वीर्य की जागृतता, वीर्यपना जागृत हुआ है। वीर्यपना जागा है।

समझ में आया? अल्पकाल में आस्रव के विकल्पों को तोड़कर निर्विकल्प परमात्मा को प्राप्त करे-ऐसा उसका वीर्य है, यह कहते हैं।

तीसरा फल थोड़ा लिया... '**पाप कर्म का अनुभाग घटावे...**' पापकर्म का रस घट जाये, पुण्यकर्म का अनुभाग बढ़ जाये। लो! समझ में आया? चौथा फल '**आयुकर्म के अतिरिक्त समस्त कर्मों की स्थिति...**' घटती जाती है। सहज अनुभव होने पर भगवान आत्मा अपने अक्षय स्थितिवन्त भगवान आत्मा के अनुभव से अनुभव होने पर पुण्य का रस बढ़ता है, पाप रस घटता है, समझे न? और आयु की स्थिति भी कम बाँधता है, अधिक नहीं बाँधता यह नरक आदि की और स्वर्ग की भी अमुक बाँधता है। '**आयु कर्म के अतिरिक्त समस्त कर्मों की स्थिति...**' कम बाँधता है। आयु की एक अधिक बाँधता है परन्तु दूसरी स्थिति तो बहुत ही कम (बाँधता है) क्योंकि मोक्षमार्ग आया उसे संसार की स्थिति कैसे बढ़े? भगवान आत्मा अपना मोक्ष के, छूटने के मार्ग में चढ़ा, उसे छूटने की स्थिति कैसे बढ़े? वह कर्म तो अब छूटने योग्य है, उनकी स्थिति बहुत ही अल्प रहती है, विशेष नहीं होती है।

'**यदि केवलज्ञान उत्पन्न करने योग्य ध्यान न हो सके तो फिर मनुष्य, देवगति में जाकर उत्तम देव होता है। यदि सम्यग्दर्शन का प्रकाश टिक रहा हो तो...**' यह टिक रहा हो, क्या? इसका यह बना, आत्मा है, और बना रहे वह कहाँ नहीं बने? समझ में आया? '**यदि सम्यग्दर्शन का प्रकाश टिक रहा हो तो फिर प्रत्येक जन्म में आत्मानुभव करके अपनी योग्यता बढ़ाया करता है।**' एकाध, दो भव करने पर भी, राग की मन्दता है, पुरुषार्थ की कमी है तो उसमें आगे बढ़ने से अनुभव बढ़ता जाता है। कहो, समझ में आया? अन्त में आठों कर्मों का क्षय करके, चार का (क्षय होने पर) अरहन्त परमात्मा होता है, ज्ञानावरणीयादि नाश होकर सर्वज्ञ होता है (और) अघाति का क्षय होने पर सिद्ध होता है। लो, क्या फल नहीं होता? यहाँ तक फल होता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'**उसी के प्रताप से श्रुतकेवली होता है।**' आत्मा के अनुभव से श्रुतकेवली होता है। आहाहा..! पढ़ने से नहीं होता-ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा..! क्या फल नहीं होता? आत्मा आनन्दकन्द की जहाँ अनुभवदशा प्रगट हुई, कहते हैं कि (वह) श्रुतकेवली होता है। पढ़ना नहीं पड़ता और श्रुतकेवली होता है। आत्मा पढ़ा, वह श्रुतकेवली होता है-ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- बारह अंग, चौदह पूर्वधारी श्रुतकेवली?

उत्तर :- हाँ, यहाँ निश्चय भान हुआ, वह श्रुतकेवली हुआ, परन्तु यह श्रुतकेवली उसकी बात करते हैं, ज्ञान की उग्रता की बात करते हैं। समझ में आया? श्रुतकेवली तो निश्चय से अनुभव हुआ, वह निश्चय श्रुतकेवली ही है। वह बारह अंग, चौदह पूर्वधारी श्रुतकेवली नहीं परन्तु यह अनुभव होने पर वह श्रुतकेवली होता है-ऐसा कहते हैं। उसके अनुभव की जाति ऐसी है कि वहाँ अन्दर से आगे बढ़ने पर श्रुतकेवली हो जाता है। यह शास्त्र पढ़ते... पढ़ते... पढ़ते... श्रुतकेवली होता है-ऐसा नहीं, ऐसा निषेध करते है। भगवान की खान में यहाँ जो पूर्ण ज्ञान पड़ा है, उसका अनुभव होने पर श्रुतकेवली होता है, अवधि होता है, मनःपर्यय होता है... समझ में आया? और केवल (ज्ञान) भी होता है।

'**आत्मानुभवी का उद्देश्य केवल शुद्धात्मा का लाभ है।**' लो! '**परन्तु पुण्यकर्म बढ़ने से रिद्धि सम्पदाये स्वयं प्राप्त हो जाती हैं।**' आता है, कहते हैं। दृष्टान्त दिया है आम्रफल, आम्रफल... आम... आम बोया, आम बोया तो पहले तो उसे पत्तियाँ आदि होती हैं न? पत्र, डाली, यह होने के बाद फल होता है। '**जैसे आम के लिये ही माली आम का वृक्ष बोता है, फल आने के पहले वह माली वृक्ष के पत्ते, डाली, और फूल का अनुभव करता है।**' बाद में आम का (अनुभव) होता है। समझ में आया? ऐसे आत्मा का अनुभव होने पर कितना ही पुण्य का भाग उसे बाहर आता है। स्वर्ग में सुख, चक्रवर्ती, तीर्थंकर इत्यादि... आत्मा का सुख पूर्णानन्द की प्राप्ति (होता है)।

दूसरा दृष्टान्त दिया है। '**जैसे राजमहल की तरफ**

जानेवाला मनुष्य सुन्दर मार्ग पर चलता है।' बड़ा चक्रवर्ती का बंगला हो, उसमें जाने पर मार्ग के रास्ते में ही उसकी दूसरी जाति होती है। वह कहीं दूसरे के घर जैसा मार्ग अन्दर नहीं होता।

मुमुक्षु :- गली-कूची नहीं होती।

उत्तर :- गली कूचे नहीं, मार्ग ही दूसरे प्रकारका होता है। जहाँ दिग्विजय रहता हो, वहाँ बंगले में अन्दर गया, वहाँ बड़ा बंगला.. ओहो..! देखो तो मार्ग ही सब ऐसा होता है। बड़ा बंगला हो उसका रास्ता (अलग प्रकार का होता है)। चक्रवर्ती के बंगले जाना हो तो उसका रास्ता ही सब (अलग प्रकार का होता है)। इसी प्रकार दरवाजे में प्रवेश करते ही चारों ओर उपवन होते हैं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'**मनोहर उपवनों में रुकता है...**' लो! विश्रान्ति लेना पड़े.. थोड़ा लम्बा मार्ग (होवे) तो बैठे, '**शीतल जल पीता है...**' बड़े राजा के बंगले बड़े, दो-दो-पाँच-पाँच, दस-दस, बीस-बीस गाँव में (होते हैं)। 'जापान'में बड़ा दरबार है न! बहुत बड़ा है, बहुत बड़ा। कितने मील में तो उसका बड़ा बंगला है। जापान कहा न? राजा की बात सुनी थी, कहीं लिखी हो, सुनी हो... दिमाग में किसे याद होती है? समझ में आया? '**पौष्टिक फल खाता है...**' ऐसे फल हों, वे तोड़कर खाता है। समझे न? लो, ठीक!

उसी प्रकार '**मोक्ष का अर्थी जीव निर्वाण पहुँचने के लिए आत्मा के अनुभव की सुखदायक सड़क पर चलता है।**' आत्मा के अनुभवरूपी सुखदायक सड़क पर चलता है, वहाँ दुःख नहीं है। आहाहा..! मोक्षरूपी महल में पहुँचने से पहले भी सुखदायक सड़क पर चलता है। अन्तर के आनन्द की एकाग्रता द्वारा सुखरूपी सड़क पर चलता है। समझ में आया? ऐसा फल है। लो! (फिर) तत्त्वानुशासन का कुछ कहा है। यही कहा है।

मुमुक्षु :- वस्तु में तो मिठास है परन्तु उसके वर्णन में भी मिठास है।

उत्तर :- वर्णन में, वाणी में मिठास है, वह तो अमृत कहलाता है, उसको (आत्मा को) लेकर। समझ में आया? शक्कर की थैली हो, वह शक्कर में तोली जाती है। शक्कर होती है न? बड़ी-बड़ी डली! चार-चार मळ के (वारदान होते हैं।) शक्कर का वारदान शक्कर में तुलता है। ढाई सेर का वारदान शक्कर में गिना जाता है। रुपये की थैली, यह रुपये की थैली रुपये में तुलती है। पहले रुपये की थैलियाँ भरती थीं, वह रुपये पहले नगद थे न! थैलियों की थैली भरते। 'सायला' का सुना था न! सायला का नहीं? सायला है न, सायला! वहाँ पहले सेठ था, अच्छा सेठ था, उसके पुत्र का विवाह था, पुत्र का विवाह, राजा को सेठ के प्रति प्रेम, सेठ को राजा के प्रति प्रेम, किसी का (किसी के साथ) कपट नहीं। स्पष्ट बतावे वह तो। बड़ा कमरा था, उसमें दाने की थप्पियाँ डाले वैसे रुपये के थैलों से भरी हुई थप्पियाँ थीं। राजकुमार साथ में (था), राजा का लड़का साथ में था। सेठ के पुत्र का विवाह हो, इसलिए राजा को बुलाया। लड़का ऐसे-ऐसे हाथ मारता है, वे चाँदी की थैलियाँ पड़ी थीं। रुपये की थैलियों की थैलियाँ भरी हुई, हाँ! पूरी लाइन.. बापू! यह क्या है? राजा को कहे। भाई! अपने सेठ बहुत रुपयेवाले हैं और यह रुपये यहाँ रखे हैं। क्यों कि उनका जाय तो अपने को भरना पड़े-ऐसा उन्हे अपने पर विश्वास है। राजा ऐसे मीठे थे, उनके पैसे खुले यहाँ रखे हैं। एक थैली जाये तो अपने को कहे, तो अपने को भरना पड़े। उन्हें अपने पर ऐसा विश्वास है, कोई ले नहीं, कोई इन्हें छुए नहीं। भाई! उस समय राजा ऐसे (थे)। ऐसा नहीं कि इतना सब उनके पास? मेरे पास नहीं और उनके पास इतना सब-ऐसा नहीं था। (राजा के लड़के को ऐसा कि) यह क्या है? (पहले) छुआरे बँटते न? छुआरे.. छुआरे बँटते तो राजा के कुँवर ने हाथ (लगाया कि) यह छुआरे भरे है? छुआरा नहीं, भाई! कुंवर! यह तो रुपये, सेठ के नगद रुपये हैं। इतने खुले? खुले कहाँ, यह तो अपने सेठ को अपने पर विश्वास है। हम राजा के पुत्र हैं, पुत्र की लक्ष्मी राज की है-ऐसा सोचकर उसे दरकार नहीं। कोई ले जायेगा या कोई लूटेगा-ऐसी दरकार नहीं। इसलिए खुला रखा है। ऐई..!

एक व्यक्ति के घर में एक बड़े नेता को भोजन

करने बैठाया और जहाँ खाने के लिए चाँदी की दस हजार की थाली रखी (तो कहता है) तुम्हारे ऐसे कहाँ से? स्वयं साधारण बेचारे को नेता बनाया है, घर में कुछ न हो, समझने जैसा होता है। उस साधारण गृहस्थ के घर में दस हजार के चाँदी के थाल हों, पाँच-दस लाख, पच्चीस लाघ की पूँजी हो तो दस हजार के चाँदी के थाल (रखे हों) (तो वह कहे) तुम्हारे यह कहाँ से? अरे..! ऐसी तुम्हें ईर्ष्या! वह तो राजा की मीठी नजरें, समझें न? सब लाईन ही दूसरी थी। समझे, पुण्य भी अलग (थे)।

यहाँ परमात्मा स्वयं.. ओहो..! उसका लग्न शुरु करना.. उसमें थैलियों की थैलियाँ रत्नों की भरी हों, कहते हैं। यह क्या है? यह तो रत्न से भरा भगवान चैतन्य रत्नाकर है। यह निर्भय से, अपने वीर्य से पूर्णानन्द को प्राप्त करेगा, भगवान को पूछे तो भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया? पूर्ण को केवलज्ञान को पायेगा, भगवान को पूछा कौन है कुन्दकुन्दाचार्यदेव? वहाँ पूछा, इतने चार हाथ के आचार्य वहाँ गये, चक्रवर्ती ने पूछा, चार हाथ का शरीर.. वहाँ पाँच सौ धनुष की देह। वहाँ नीचे बैठे, नीचे बैठ गये। हाथ में उठाकर (पूझता है) महाराज! यह कौन है? भरतक्षेत्र के धर्म धुरन्धर आचार्य हैं। भगवान के मुख से बात निकली। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। अभी विराजमान हैं वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे, भगवान को चक्रवर्तीने पूछा-छोटा शरीर इसलिए ऐसे नन्हें से लगें, यह टिड्डी जैसा मनुष्य होता है न? इतना छोटा नाक और यह सब.. पाँच सौ धनुष की देह और यह पाँच सौ का भाग चार हाथ और वे दो हजार (हाथ) कौन होगा? नाक, कान, हाथ, पैर... भरतक्षेत्र के धर्मधुरन्धर आचार्य हैं। पहले नम्बर के आचार्य हैं, आहाहा..! भगवान के श्रीमुख से वाणी दिव्यध्वनि द्वारा (निकली) हाँ! उन्हें ऐसी कुछ वाणी नहीं निकलती, दिव्यध्वनि द्वारा कहा- यह भरतक्षेत्र के महा आचार्य हैं। आहाहा..! इनका केवलज्ञान निश्चित हो गया है। समझ में आया? यह तो पंचम काल में अवतार है, इसलिए स्वर्ग में गये हैं। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर केवल(ज्ञान) लेकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त (केवलज्ञान लेंगे)। भगवान की वाणी में निकला कि यह आचार्य है। आहाहा..! समझ में आया? उस वाणी का योग उनके पास आया.. केवलज्ञानी के पास इच्छा बिना वाणी का योग.. देखो तो कही! आहाहा..! ऐसे यह कहते हैं, आत्मा का ध्यान करने से वीर्य प्रस्फुटित होकर अनन्त स्वरूप की रचना करने की सामर्थ्य और उत्साह वहाँ उसे बढ़ता है, केवलज्ञान लेगा।

(श्रीमद् राजचन्द्र पत्रांक)

कारण है। भोजा भगत, निरांत कोली इत्यादिक पुरुष योगी (पर योग्यतावाले) थे। निरंजन पदको समझनेवाले को निरंजन कैसी स्थितिमें रखते हैं, यह विचार करते हुए अकल गतिपर गम्भीर एवं समाधियुक्त हास्य आता है। अब हम अपनी दशाको किसी भी प्रकारसे नहीं कह सकेंगे; तो फिर लिख कैसे सकेंगे? आपके दर्शन होनेपर जो कुछ वाणी कह सकेगी वह कहेगी, बाकी निरुपायता है। (कुछ) मुक्ति भी नहीं चाहिये, और जिस पुरुषको जैनका केवलज्ञान भी नहीं चाहिये, उस पुरुषको अब परमेश्वर कौनसा पद देगा? यह कुछ आपके विचारमें आता है? आये तो आश्चर्य कीजिये; नहीं तो यहाँसे तो किसी तरह कुछ भी बाहर निकाला जा सके ऐसी सम्भावना मालूम नहीं होती। आप जो कुछ व्यवहार-धर्मप्रश्न भेजते हैं, उनपर ध्यान नहीं दिया जाता। उनके अक्षर भी पूरे पढ़नेके लिये ध्यान नहीं जाता, तो फिर उनका उत्तर न लिखा जा सका हो तो आप किसलिये राह देखते हैं? अर्थात् वह अब कब हो सकेगा, उसकी कुछ कल्पना नहीं की जा सकती।

आप वारंवार लिखते हैं कि दर्शनके लिये बहुत आतुरता है; परन्तु महावीरदेवने पंचमकाल कहा है और व्यास भगवानने कलियुग कहा है, वह कहाँसे साथ रहने दे? और दे तो आपको उपाधियुक्त किसलिये न रखे? यह भूमि उपाधिकी शोभाका संग्रहालय है। खीमजी इत्यादिको एक बार आपका सत्संग हो तो जहाँ एकलक्षता करनी चाहिये वहाँ होगी, नहीं तो होनी दुर्लभ है; क्योंकि हमारी अभी बाह्य वृत्ति कम है।

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके ३८५ वचनामृत पर भाववाही प्रवचन, दि.९-११-१९८३, प्रवचन क्रमांक-२०० (विषय : भेदज्ञान)

भले ही जीव तथा राग भिन्न रहकर एक क्षेत्रमें रहें तो भी दोनों कभी भी न तो एक रूप हुए और न ही हो सकते हैं। अतः तूँ सर्व प्रकारसे प्रसन्न हो। प्रभु! तेरी चीज कभी राग रूप हुई नहीं, इसीलिये तूँ तेरा चित्त उज्ज्वल कर, सावधान होकर रागसे भिन्नरूप आनंदस्वरूपका अनुभव कर। प्रसन्न होकर भेदज्ञानपूर्वक ऐसा अनुभव कर कि यह 'स्वद्रव्य ही मैं हूँ'। ३८५.

३८५. '**भले ही जीव तथा राग भिन्न रहकर एक क्षेत्रमें रहें तो भी दोनों कभी भी न तो एक रूप हुए और न ही हो सकते हैं।**' (राग) कहाँ रहा है? कि जीवकी अवस्थामें। जीव और राग। राग है वह जीवस्वरूप नहीं है। जीवविकार है परन्तु जीवस्वरूप नहीं है। ऐसा उसका मूल स्वरूप नहीं है। अतः '**भिन्न रहकर एक क्षेत्रमें रहें....**' जो उसके प्रदेश है वह एक है। जो भिन्न प्रदेश कहनेमें आते हैं वह भी अपेक्षासे कहनेमें आता है, मर्यादितरूपसे कहनेमें आता है। उससे अधिक भन्नता भावमें आविर्भूत करनेके लिये कहनेमें आता है। परन्तु एक आत्माके जो प्रदेश है वही प्रदेश अनादिअनन्त है—असंख्य। जितने हैं उतने ही हैं। और उसमें ही सर्व गुणोंकी पर्यायें, अनन्त गुणोंकी पर्यायें विकारी तथा अविकारी सब वहाँ उत्पन्न होती है। वहीं होती है। क्षेत्रको छोड़कर कहीं नहीं होती। यह आगमका विषय हुआ। फिर अध्यात्ममें भिन्नता करनेको रागके प्रदेश भिन्न है और पर्यायके प्रदेश भी भिन्न है ऐसा कहनेमें आता है। वह अपेक्षित है।

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— यहाँ भावकी अपेक्षासे है। जहाँ मैं अपने सामान्य स्वरूपका मैं-पने अनुभव करता हूँ, वहाँ....

...तो भी वहाँ उसे नहीं है ऐसा कहनेमें आता है। ऐसा। क्योंकि जहाँ विशेष है वहाँ अनुभव है और वहाँ सामान्य नहीं है। विशेषमें सामान्य नहीं और सामान्यमें विशेष नहीं। अन्यथा दोनों एक हो जाये।

मुमुक्षु :— अपना ही द्रव्य, अपने गुण और अपनी पर्याय है।

पूज्य भाईश्री :— अपनी ही बात है। एकमें अपनी ही बात है। अपनेमें ही जहाँ रहता है। स्वसामान्यमें अहंपना करनेका न्याय हो तब उस न्यायसे कहना वह निर्दोष है। मेरे प्रदेश भिन्न है और रागके प्रदेश भिन्न है। मेरे प्रदेश भिन्न है और मेरे क्षेत्रमें पर्यायका भी क्षेत्र नहीं है, ऐसा कहना न्यायसंपन्न है। ऐसा कह सकते हैं।

मुमुक्षु :— भावकी...

पूज्य भाईश्री :— भावकी अपेक्षासे है, स्वभावका आविर्भाव करनेकी वहाँ अपेक्षा है। वस्तुका स्वरूप जो है उसमें कोई फेरफार नहीं। स्वचतुष्टयसे जो वस्तुका अस्तित्व है द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे ऐसा जो आगममें सिद्धांत स्थापित है उसमें कोई फेरफार करके अथवा उस सिद्धांतको जूठा साबित करके कोई बात कहनेमें

नहीं आती।

मुमुक्षु :— जो रागभाव उत्पन्न हुआ...

पूज्य भाईश्री :— हाँ। पर्यायके लक्ष्यसे राग होता है। रागके लक्ष्यसे भी राग होता है, पर्यायके लक्ष्यसे भी राग होता है और गुणभेदके लक्ष्यसे भी राग होता है।

राग होनेके चार कारण, ठीक! एक तो परपदार्थके लक्ष्यसे राग होता है। दूसरा, अपने रागके लक्ष्यसे भी राग होता है। स्वयंकी क्षयोपशम आदिकी अवस्थाके लक्ष्यसे भी राग होता है। एक समयकी पर्यायके लक्ष्यसे—पर्यायमें दो बात आयी, विकारी और अविकारी—उन दोनों पर्यायके लक्ष्यसे राग होता है। अभेदसे लें तो तीन बोल ले सकते हैं। परपदार्थ, पर्याय और भेद। गुणभेदके लक्ष्यसे भी राग होता है। पर्यायमें विकारी और अविकारी दो भेद लो तो चारों मुद्दे रागकी उत्पत्तिके कारण हैं। अतः एक त्रिकाली सामान्य स्वसत्का लक्ष्य करवाया है और ये समस्त लक्ष्य छुडानेका जो प्रयोजन है उस प्रयोजनसे कहनेपर वह वचन निर्दोष है। प्रयोजनसे कहा जानेपर और कहने पर वह प्रयोजन कहनेवालेके आत्मामें सिद्ध होने पर, ऐसा लेना, वह कथन निर्दोष है। क्योंकि कहनेवालेको उसके गुणका आविर्भाव होना चाहियेन। वह क्यों कहता है? किसलिये कहता है? कि अपने गुणका आविर्भाव करनेको कहता है। ऐसा निज प्रयोजन भी वह सिद्ध करता है। दूसरेके प्रयोजनमें उसके वचन निमित्तभूत होते हैं।

मुमुक्षु :— ... डालकर अपना ज्ञान करना वह...

पूज्य भाईश्री :— प्रश्न समझमें नहीं आया।

मुमुक्षु :— स्वपरका जो भेदज्ञान... अभी कहा न? परका ज्ञान ... डालना हो तो— आत्माकी ओर जो लक्ष्य नहीं है और .... वह लक्ष्य हमें...

पूज्य भाईश्री :— वह चारों पर है। एकमें डालना हो तो चारोंको परमें डालना। यह स्व और बाकी सब पर। ज्ञायक सो स्व, ज्ञायक सो मैं और बाकी सब पर। उसमें सब आ जाता है। है न? और बाकी सब पर। परमें चारों बोल आ जाते हैं।

मुमुक्षु :— ... कहनेसे एक ज्ञानगुणकी ही पर्याय आती है या सब आ जाता है? श्रद्धा, ज्ञान आदि सब?

पूज्य भाईश्री :— कोई भी। पर्यायमें मोक्ष पर्यंतकी सभी पर्यायोंका लक्ष्य करने जैसा नहीं है। सिद्धात्मा तो करते ही नहीं, यद्यपि साधक भी नहीं करते हैं। विकारी, अविकारी कोई भी भेद। पर्यायको वेदता है। साधक अवस्थामें विकार है उतना दुःखको, अविकार है उतना सुखको। और केवली उनकी परिपूर्ण शुद्धता एवं सुखको वेदते हैं। लरन्तु लक्ष्य तो नहीं करते। परन्तु जो लक्ष्य करता है अनुपस्थित ऐसी अपनी केवलज्ञान आदिकी पर्यायका, भविष्यकालमें उस आत्माको केवलज्ञान होनेवाला है, परन्तु वर्तमानमें भावनासे उठे, पूर्णताके लक्ष्यसे शुरूआत, वहाँ भी लक्ष्य शब्दप्रयोग है, परन्तु वह लक्ष्य करने योग्य नहीं है। उस लक्ष्यका अर्थ वहाँ ध्येय है। वहाँ प्रयोजन है।

लक्ष्यके भिन्न-भिन्न अर्थ है। पर्यायमें लक्ष्यका विषय आये तब वहाँ ध्येय समझना। वहाँ प्रयोजन लेना। प्रयोजनका दृष्टिकोण लेना। वहाँ आश्रय नहीं लेना। और त्रिकालीका लक्ष्य करनेकी बात आये वहाँ आश्रयकी बात है। वहाँ आश्रय करना ऐसी बात है। इसप्रकार दोनों भिन्न-भिन्न अर्थ हैं लक्ष्यके। अतः कोई जीवको भविष्यमें केवलज्ञान होनेवाला हो और वर्तमानमें भावना भाये कि ऐसी मोक्षपर्याय मुझे प्रगट होओ। तो वहाँ उसे राग होगा। अनुपस्थित ऐसी केवलज्ञानकी पर्यायके लक्ष्यसे उसे राग होगा। नियमसे उसे राग होगा। नियमबद्धपने। यह चारों पद ऐसे हैं। परपदार्थ, पर्यायका विकार, पर्यायका अविकार और गुणभेद। चारों पद ऐसे हैं कि नियमसे उसके लक्ष्यसे राग हो, हो और हो ही। नहीं हो ऐसा नहीं बनता।

और सम्यग्दर्शनका विषय जो त्रिकाली शुद्धात्मा है, ज्ञायक आत्मा है उसके लक्ष्यसे वीतरागता हो, हो और हो ही। यहाँ राग होगा ही, यहाँ वीतरागता होगी है। स्पष्ट बात है। कोई गोल-गोल बात नहीं है। अपेक्षा कह-कहकर गोल-गोल बात कही है, पेक्षा कहकर बातका कोई निर्णय नहीं होता है ऐसा नहीं है। निश्चितरूपसे, नियमबद्धपने ऐसी ही बात है।

'भले ही जीव तथा राग भिन्न रहकर एक

क्षेत्रमें रहें...' एक हो जाते हैं वह तो बात ही नहीं है। एक क्षेत्रमें रहकर भी अपने-अपने स्वरूपरूप रहते हैं। राग रागस्वरूप रहता है। जीवकी अस्थामें विकार होनेपर यदि जीवस्वरूप हुआ हो, रहा हो तो जीवमें-से मिटे नहीं। क्योंकि वह उसका स्वरूप हो गया। परन्तु ऐसा स्वरूप वास्तवमें जीवका नहीं है। सिद्ध परमात्माओंमें वह देखा नहीं जाता। निश्चयसे रागजीवका स्वरूप हो तो वहाँ रहना चाहिये। परन्तु अनन्तवें भागमें भी रागकी मलिनता उस शुद्ध उज्जवल दशामें नहीं है।

श्रीमद्जी जहाँ शुक्लध्यानका वर्णन करते हैं वहाँ ऐसी बात करते हैं। शुक्ल अर्थात् उज्जवल। शुद्ध-उज्जवल चन्द्रमाके तेजसे भी और समुद्रकी फेनसे भी उज्जवल। ऐसा शब्दप्रयोग किया है। समुद्रकी फेन अत्यंत श्वेत दिखती है। बहुत फेन हो तब अत्यंत श्तेत होती है। रातका अंधेरा हो तब तो एकदम श्वेत दिखती है। मौज आती है न इसलिये। ऐसा उज्जवल शुक्लध्यान होता है। ऐसा वर्णन करते हैं। नहीं हुआ हो तो भी उसका ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। जब होता है तब तो ज्ञान होता है, उसमें कोई नवीनता नहीं है। परन्तु होने पूर्व भी ज्ञान होता है।

मति-श्रुतएव सर्व द्रव्येषु पर्यायेषु। तत्त्वार्थ सूत्रका उमास्वामीका सूत्र है। सर्व द्रव्येषु पर्यायेषु। सर्व द्रव्य पर्यायेषु। अर्थात् जितना केवलज्ञानका विषय जैसे सर्व द्रव्य और पर्याय है, वैसे मति-श्रुतका विषय भी सर्व द्रव्य और सर्व पर्याय है। सर्व द्रव्य है उतना नहीं लिया है। सर्व पर्याय है ऐसा भी लिया। ठीक! उपयोग नहीं है। ज्ञान नहीं है ऐसा नहीं कह सकते। छहों द्रव्यका ज्ञान है। उतना केवलज्ञानका विषय प्रत्यक्ष है। उतना ही परोक्ष विषय मति-श्रुतज्ञानका सम्यग्ज्ञानमें परोक्षपने है। उपयोग नहीं हुआ है तो भी उसकी लब्धि उसको प्रगट हो गयी है।

लोग लब्धिके पीछे आकर्षित होते हैं न? बनिये खातावहीमें लिखते हैं, गौतम गणधरकी लब्धि होओ। गौतमस्वामीने तो उसको छोड़ दी। तू कहता है कि मुझे रखनी है। ऐसे तो कोई लब्धि प्राप्त नहीं होती। पीछे जाये तो भागे। पकड़ने जाये तो भागे। वह तो जो त्याग करता है उसको आगे आती है। जो छोड़ता है उसको प्रगट होती है। पीछे-पीछे जाता है उसको वह प्राप्त नहीं होती।

क्या कहते हैं? एक क्षेत्रमें भिन्न रहकर भले ही रहे परन्तु दोनों कभी एकरूप नहीं हुए हैं और कभी हो भी नहीं सकते। भले ही अनन्त जीव अनन्त कालसे रागको जीवस्वरूप मानते हैं, अनुभवते हैं और अभी अनन्त काल अनुभव करेंगे अनन्द जीव, फिर भी वस्तुस्थितिका ऐसा होना असंभवित है। राग जीवरूप हो नहीं पायेगा। लेकिन हमने रागको इतना अपना बनाकर रखा है, इतनी मीठास वेदी है कि अब उस रागको छोड़ना किसी भी क़िमत पर पुसाये ऐसा नहीं है। अरे..! जी सके ऐसा नहीं है। लोग नहीं कहते हैं? अब जी नहीं सकते। तीव्र राग हो तब ऐसा कहते हैं कि आपके बिना जी नहीं सकते। तीव्र द्वेष हो तब ऐसा कहते हैं कि आपके साथ किसी भी प्रकारसे रह नहीं सकते। ऐसे सब प्रसंग प्रत्यक्ष देखे हैं, एक ही व्यक्ति सम्बन्धित। उसको क्या हो गया? कि रागने पहलू बदला। एक सिक्केका दूसरा छोर। राग है वहाँ द्वेष खड़ा ही है।

'**अतः तूँ सर्व प्रकारसे प्रसन्न हो।**' ऐसा कहकर जीवको हलका कर देते हैं। तेरे परिणमनमें रागके एकत्वके कारण कदाचित् तुझे ऐसा लगे कि मैं रागसे घिरा हूँ, अब मैं रागसे घिर गया हूँ। तो कहते हैं कि तू प्रसन्न हो। तेरे चित्तमें इतना हलकापन आयेगा कि राग है वह जीवस्वरूप नहीं हुआ है, ना हो सकता है। तुझे उलझनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उलझन होती है न? मनुष्यको जब रास्ता नहीं मिलता है तब उलझनमें आ जाता है कि इसका क्या करना? यह राग किस खानमें-से चला आता है कि छूटता ही नहीं। निकलता ही रहता है... निकलता ही रहता है.. निकलता ही रहता है। कहते हैं कि अज्ञानकी खानमें-से वह चला आता है। जो निज स्वरूपका अज्ञान है—स्वसत्का अज्ञान है उसमें-से राग चला आता है। और वह अज्ञान एक समयकी पर्याय है। उसकी कोई लंबी गुँजाईश नहीं है। कितनी बड़ी खान है वह? कि एक समयकी पर्याय जितनी।

अनादिसे चला आ रहा है न? अनादिसे वह नया.. नया.. नया... है। अज्ञान भी नया और राग भी नया। प्रतिसमय नया-नया है।

जब स्वसत्का ज्ञान होता है अथवा उसको ऐसा कहते हैं कि अनुभव भले ही तुझे बादमें हो,परन्तु अभी हलका होकर इतनी चित्त प्रसन्नतामें तो आकि राग है वह जीवस्वरूप नहीं हुआ है, जीव रागरूप नहीं हुआ है। भिन्न-भिन्न रहे हैं। भले ही एक क्षेत्रमें रहें हो तो भी भिन्न-भिन्न, अलग-अलग रहे हैं। एक नहीं हुए।

'**प्रभु! तेरी चीज कभी रागरूप हुई नहीं,**' गुरुदेव यह संबोधन करते थे। प्रभु कहकर। सब आत्मा स्वरूपसे परमात्मा हैं। स्वरूपसे प्रभु है। प्रभु कहकर बुलाते थे। यहाँ सुनने आये उनको ही कहे ऐसा नहीं। पत्रिकामें विरूद्ध लिखते थे न? उसको भी ऐसा ही कहते। चाहे जितना तुच्छतापूर्ण लिखा हो, चाहे जितना सिद्धांत विरूद्ध लिखा हो, तो पढ़कर ऐसा कहते, अरे.. प्रभु! ये क्या? उसको भी प्रभु ही कहते थे। अरे.. प्रभु! ये क्या? ठीक! दृष्टि अपेक्षासे तो वह प्रभु है। भूला है, अपनी प्रभुताको वह भूल गया है।

मुमुक्षु :— श्रोताको भी प्रभु कहते थे?

पूज्य भाईश्री :— श्रोता श्रवण करने आये हैं इसलिये कहते थे ऐसा नहीं। ऐसे ही हाँ भरते हैं इसलिये प्रभु कहते थे ऐसा नहीं। उनको न कहनेवालेको भी प्रभु कहे। सोनगढ़वाले कहते हैं वह जूठ है, फलाना है। चाहे जैसे स्थापित करते हो। प्रभु! ऐसा नहीं है। अरे.. भगवान! ऐसा नहीं है। भगवान कहे, प्रभु कहे। सामान्य बातचीतमें यह सब बातें आती है। प्रवचनमें तो ऐसा कहें, लेकिन सामान्य बातचीतमें ऐसा कहे। पहले तो भक्तिमें-से आकर फिर बैठते थे, आहारका समय हो तबतक बाहर पाट पर बैठते थे। फिर ऐसे जो कहलानेवाली जैन पत्रिकाएँ, कहलानेवाली जैन पत्रिका ही है न, दुनियाभरकी आलोचन करते हो, उसमें सोनगढ़की भी साथमें आती थी।

कहते हैं, '**प्रभु! तेरी चीज कभीरागरूप हुई नहीं,...**' तूँ भगवान आत्मा है। और तेरा आत्मा तेरा स्वरूप छोड़कर रागरूप हो गया हो ऐसा नहीं हुआ है और हो जाये ऐसा भी नहीं है। ऐसा हुआ नहीं है और होगा भी नहीं। विश्वास आना चाहिये, उसको प्रतीति आनी चाहिये। प्रतीति आये तो उसके परिणमनमें फेरफार हो जाय। '**इसलिये तूँ तेरा चित्त उज्जवल कर,...**' यह शर्त रखी है। '**तूँ तेरा चित्त उज्जवल कर, सावधान होकर रागसे भिन्नरूप आनंदस्वरूपका अनुभव कर।**' चित्त प्रसन्नता ली है न? प्रसन्न हो तबसे लिया है।

रागके एकत्वमें तेरा चित्त घिर गया है। थोड़े हलके होकर, धीमा होकर—रागकी पक्कड़ ढीली करके। छोड़ देनी है, लेकिन ढीली तो कर। ऐसा कहते हैं। रागकी पक्कड़ ढीली करके, चित्तको उज्जवल करके अर्थात् ज्ञानको निर्मल करके। चित्त अर्थात् ज्ञान। थोड़ा भूमिकाका ज्ञान निर्मल करके। अर्थात् रागरसको स्वरूपकी प्राप्तिकी जिज्ञासामें आकर रागरसको तोड़कर, रागरसको मंद करके चित्तको उज्जवल करके ज्ञानमें थोड़ा अवकाश तो कर। ज्ञानका दर्पण है। दर्पण है तेरा ज्ञानका उसको थोड़ा निर्मल कर। उसके ऊपरका मैल थोड़ा पतला होगा तो अन्दर तेरा जो स्वरूप है, आनन्दस्वरूप है उसका अनुभव होनेका अवकाश प्रगट होगा।

मुमुक्षु :— रागका रस फ़िका करके अर्थात् ज्ञानका रस...

पूज्य भाईश्री :— ज्ञानरस वृद्धिगत हो। रागरस वृद्धिगत होता है तब ज्ञानरसका नाश होता है। ज्ञानरस वृद्धिगत होता है तब रागरसका नाश होता है। परस्पर एकदूसरेके विरोधी—विरुद्ध स्वभाववान है।

'**इसलिये तूँ तेरा चित्त उज्जवल कर, सावधान होकर...**' जागृत होकर। सावधान होकर ऐसा कहना है। तू आत्मा है। तू कहीं संसारीप्राणी नहीं है। मनुष्यप्राणी भी नहीं, बनिया, ब्राह्मण भी नहीं और स्त्री-पुरुष भी तूँ नहीं है। अमीर-गरीब भी नहीं और गृहस्थी, त्यागकी भी तूँ नहीं है। यह सब बोल आत्माको लागू नहीं पड़ते। मिथ्याबुद्धिसे ऐसा अनुभव करना वह आत्माको संसारमें परिभ्रमण करनेका कारण है। अथवा अनेक पापकी परंपराका कारण यह पर्यायबुद्धि है कि कुछ न कुछ उसने स्वयंकी कल्पना

की है। मैं फलाना.. फलाना.. फलाना.. फलाना हूँ।

सावधान होकर अर्थात् जागृत होकर कि मैं ज्ञायकमात्र हूँ। इसप्रकार अंतरमें जागृत होकर '**रागसे भिन्नरूप...**' रागसे भिन्न आनंदस्वरूपका अनुभव कर। यह एक क्षणका अनुभव तेरे अनंत जन्म-मरणका छेद कर देगा। कितनी शक्ति आत्माकी! एक क्षणका आनन्दका अनुभव हो, उसको फिर अल्प बाकी रह जाते हैं। उसको कोई लम्बे भव बाकी नहीं रहते। पाँच, सात, दस भवमें तो मुक्त हो जाये, मंद प्रयत्नवान। तीव्र प्रयत्नवान तो दो-तीन भवमें मुक्त हो जाता है। उग्र प्रयत्नवान। कहाँ अनंत भव और कहाँ पाँच-सात! उसकी तो कोई गिनती नहीं होती।

यह एक तुलना करने जैसी है। एक क्षणका अनुभव अनंत जन्म-मरणका नाशक, उसकी क़िमत कितनी? और उसकी यहाँ संभावना है। यदि उपयोगका प्रयोग करे तो यह मुनाफा होनेकी पूरी संभावना है। फिर व्यापार किये बिना रहेगा? यदि लाभ समझमें आये तो। लाभ दिखे, व्यापार करनेकी अपनी शक्ति और संभावना जाँच ले और यदि वह समझमें आये तो व्यापार किये बिना रहे नहीं। नहीं तो अनंत जन्म-मरण खड़े हैं। वह बात भी साधारण नहीं है। नुकसान भी बड़ा और लाभ भी बड़ा। बड़ा लाभ होता है। वह लाभ नहीं। लोग मानते हैं। लौकिक आशय तो इसमें आये ऐसा नहीं है। 'द्रव्य आत्मलाभ पारिणामिकः'। आत्मलाभको लाभ कहते हैं। हस्ति। लाभ अर्थात् हस्ति। वास्तवमें तो लाभका अर्थ होता है हस्ति। द्रव्यकी हस्ति है पारिणामिकभाव। जिसका लक्ष्य करवाना चाहते हैं। अनन्त शास्त्र, अनन्त ज्ञानियोंके उपदेशमें जिसका लक्ष्य करवानेका आशय है, वह आत्मलाभस्वरूप पारिणामिकभावस्वरूप आत्मतत्त्व है। ऐसा लेना है।

'**सावधान होकर...**' लक्ष्य करना है न इसलिये (कहते हैं)।'**सावधान होकर रागसे भिन्नरूप आनंदस्वरूपका अनुभव कर। प्रसन्न होकर भेदज्ञानपूर्वक ऐसा अनुभव कर कि यह 'यह स्वद्रव्य ही मैं हूँ'**।' रागसे भिन्नरूप कहा। उसही बातको भेदज्ञानपूर्वक कहा। जो कुछ स्वद्रव्यका अनुभव होता है वह भेदज्ञानसे होता है। भेदज्ञान करना वह अनुभवका प्रयास है, अनुभवका प्रयत्न है। अनुभवमें स्वद्रव्यका आश्रय है। उस स्वद्रव्यका आश्रय होनेके लिये और परद्रव्यका अनादिसे आश्रय है उस परद्रव्यका आश्रय छूटने हेतु जो कोई प्रक्रिया होती है, उस प्रक्रियाको यहाँ भेदज्ञानकी प्रक्रिया कहते हैं। भेदज्ञानमें पराश्रय छूटनेकी एक प्रक्रियाका प्रारंभ होता है। ये नहीं.. ये नहीं.. ये नहीं.. ये नहीं ऐसा जो रागका निषेध है, राग एवं रागका विषय दोनोंका निषेध है वह उसका आश्रय छोड़नेकी प्रक्रिया है। और ज्ञान सो मैं, ज्ञायक सो मैं, इसप्रकार स्वमें मैंपना करनेका बार-बार जो प्रयत्न भेदज्ञानमें होता है वह स्वआश्रय करनेका प्रयास है, प्रक्रिया है। अर्थात् उल्लासित वृत्तिसे। कमज़ोरकी भाँति नहीं। उल्लासित वृत्तिसे, उल्लासित वीर्यसे ऐसा कहते हैं।

श्रीमद्जीने वह शब्दप्रयोग किया है। उल्लासित वीर्यवान तत्त्व प्राप्त करनेका अधिकारी है। ऐसा लक्षण लिया है। पात्रताके बहुत लक्षण है न? उसमें यह एक लक्षण लिया है। उल्लासित वीर्यवान तत्त्व प्राप्त करनेका अधिकारी है। अर्थात् अवस्थामें जिसने उल्लासित होकर काम करनेकी प्रकृतिगत जो लाईन है, भले ही अबतक बाह्य कार्य उल्लासपूर्वक किये हों, परन्तु उसका वही वीर्य जब इस ओर मुड़ता है, दिशा बदलता है तब उल्लासित वीर्यसे ज़ोरसे वह अपने स्वकार्यमें लगता है। उसे स्वतत्त्व विशेषरूपसे अथवा अत्यंत समीपतासे, शीघ्र अनुभवमें आता है। क्योंकि लक्ष्य होनेमें भी उसको जो पुरुषार्थका वेग, जितना कारण देना चाहिये उतना न दे, उसको यहाँ पुरुषार्थ कहते हैं, तबतक अनुभव नहीं होता और राग मिटता नहीं। इसलिये प्रसन्न चित्त होकर ऐसा यहाँ लिया। शब्द दूसरा लिया है।

'**प्रसन्न होकर...**' प्रसन्न होनेमें रागकी कलुषिततासे मुक्त होना है। संक्लेश परिणाम है। राग है वह सब क्लेशित परिणाम हैं। संक्लेश अर्थात् क्लेशसहितके परिणाम हैं। उससे हलका होकर, भेदज्ञान कर-करके स्वद्रव्यका अनुभव कर और जन्म-मरणका नाश कर। यहाँ तक रखते हैं....

धार्मिक कार्यक्रम

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के वार्षिक समाधिदिन पर तीन दिवसीय धार्मिक कार्यक्रम निम्नोक्त स्थान पर आयोजित किया गया है। चैत सुदी ३, सोमवार दि.८-४-२०१९ से चैत्र सुदी ५, बुद्धवार दि.१०-४-२०१९ पर्यंत जिनमंदिर में मंडलविधान रखा गया है। एवं 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में प्रातः ७.०० से ८.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का सीडी प्रवचन, दोपहर ४.०० से ५.०० गुणानुवाद, रात ८.०० से ९.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का वीडियो प्रवचन एवं भक्ति रखी गई है। दि.१०-४-२०१९, चैत्र सुदी ५ के दिन सुबह ४.०० बजे 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में भक्ति एवं दो मिनट का मौन रखा जायेगा। तत्पश्चात ७.०० से ८.०० प्रवचन और बाद में पूज्य भाईश्री के समाधि स्थल पर भक्ति रखी गई है। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षुओं के लिए आवास एवं भोजन व्यवस्था निःशुल्क रखी गई है। आनेवाले मुमुक्षु भाई-बहनों से विनम्र सूचन है की वे अपने आने कि सूचना पहले से दे, ताकि उनके आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क :- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर, फोन : (०२७८) २५१५००५

स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७१०४८६८

प्रकाशन

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखित चिंतनकणिकाओंका पुस्तक 'अनुभव संजीवनी' गुजराती तथा 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' (गुजराती तथा हिन्दी) पुनः प्रकाशनार्थ प्रेस पर भेजे गये हैं। जिनकी मुमुक्षुभाई नोंध ले।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनकी ८७वीं सम्यक् जयंति

जिन्होंने लघुवयमें ही भवांताकारी पवित्र सम्यग्दर्शन प्रगट किया, पूज्य गुरुदेवश्रीकी सातिशय देशनाको सार्थक करके मुमुक्षुओंके परम आदर्श बने, ऐसे धन्यावतार प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनकी ८७वीं सम्यक् जयंति प्रसंग पर कोटि-कोटि वन्दना।

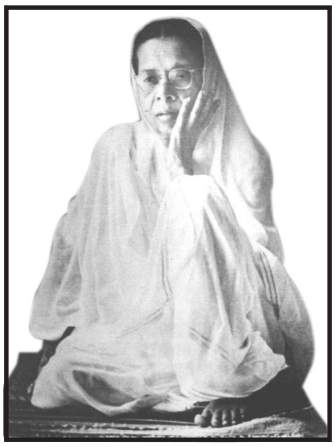

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी.१ B

प्रश्न :-

समाधान :- स्वर्ग-नर्क? स्वर्ग-नर्क है। जैसे परिणाम होते हैं, कोई अच्छा भाव करे, पुण्य के ऐसे-ऐसे अच्छे भाव करे, भगवान का, गुरु की सेवा का, भगवान की पूजा का, शास्त्र पढे ऐसे सब अच्छे भाव करे तो ऐसे अच्छे भाव करनेसे पुण्यबंध होता है। अच्छे भाव करनेसे पुण्यबंध होता है। उसके फल में स्वर्ग मिलता है। जगत में स्वर्ग है। और बहुत ऐसे पाप के भाव करता है तो दुनिया में उसका फल (भोगने को), बहुत पाप करता है तो दुनिया में तो कोई उसको जेल में बन्द करता है, या कोई उसको फाँसी देता है, लेकिन उससे भी बहुत अधिक पाप करता है तो उसका फल कहाँ मिलता है? तो नर्क है। नर्क में उसका फल भोगने को वह जाता है। जीव स्वयं जाता है। नारकी का शरीर मिलता है उसको। नर्क में उसको बहुत दुःख होता है। ऐसी पीड़ा होती है, ऐसी ठण्डी, ऐसी गर्मी, पृथ्वी ऐसी की शरीर का छेद हो जाय, ऐसे नर्क में जाता है। जो बहुत पाप करता है, मांसाहारी होते हैं, वैसे होते हैं वह सब नर्क में जाते हैं। जो अच्छा भाव भगवान का करता है, भले ही समझपूर्वक करे उसकी तो क्या बात? बिना समझे भी भगवान की भक्ति करता है, गुरु की भक्ति करता है तो वह स्वर्ग में जाता है। तो उसको अच्छा स्थान मिला, शरीर अच्छा मिले, बाहर में अनुकूलता मिले, सब अच्छा मिलता है। ऐसा स्वर्ग-नर्क जगत में है। बहुत अच्छा भाव करता है तो जगत में उसका फल भोगने के लिये स्वर्ग है। लेकिन वह भी एक भव है। उसमें भी आयुष्य पूर्ण हो जाता है। आयुष्य पूर्ण होने के बाद जो भाव किये हैं वैसे वह मनुष्य में आता है, कोई तिर्यंच में भी चला जाता है, यदि अच्छे भाव नहीं करे तो। पशु गाय, भैंस, कूत्ता ऐसे-ऐसे पशु में भी चला जाता है। ऐसे भाव करे तो उसमें जाता है, बहुत पाप के भाव करे तो नर्क में जाता है, बहुत पुण्य का करे तो देव में जाता है और ऐसा मध्यम करे तो पशु में जाता है। और उससे भी अच्छे करे तो मनुष्य होता है। मनुष्य में ऐसे भद्रिक परिणाम करे, माया-कपट नहीं करे, ऐसे भद्रिक परिणाम करे तो मनुष्य होता है। ऐसा है, शास्त्र में बहुत आता है।

नर्क, स्वर्ग, तिर्यंच और मनुष्य ये चार गति हैं। फिर आत्मा को पहिचाने, स्वानुभूति करे तो चारों गतिसे छूट जाता है, फिर उसे गति नहीं मिलती। आत्मा स्वयं आत्मा में लीन होता है, मोक्षगति में (चला जाता है)। फिर तो शरीर भी नहीं मिलता। देव में भी शरीर तो मिलता है। देव में उसको बहुत रत्न मिले, धन, ऐसे-ऐसे महल मिले, यदि उसमें राग हो जाये, एकत्व हो जाये तो फिर पापबंध हो तो पशु में चला जाता है।

मुमुक्षु :- राग और द्वेषसे छूटा कैसे जाये?

समाधान :- आत्मा को पहिचाने तो राग-द्वेष छूट जाये। आत्मा को पहिचाने। ये राग-द्वेष मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो आत्मा हूँ, जाननेवाला हूँ, मैं तो ज्ञाता हूँ, ये राग-द्वेष मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसे मन्दता करे, पहले तो छूटते नहीं, तो उसका भेदज्ञान करे (कि) ये मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो आत्मा हूँ।

ये राग-द्वेष हो जाये तो भी उसकी तीव्रता नहीं करे, मन्द हो जाये। मन्दता करे और उसका भेदज्ञान करे कि मैं जाननेवाला हूँ। जाननेवाले का स्वभाव प्रगट होवे तो धीरे-धीरे भेदज्ञान करके यदि स्वरूप में लीन हो जाये और धीरे-धीरे आगे बढ़े तो राग-द्वेष का क्षय हो जाता है। पहले मन्द होते हैं। अशुभभाव होता है, फिर शुभभाव-भगवान के, जिनेन्द्रदेव के, गुरुस्तुति, शास्त्रविचार आदि शुभभाव करे। लेकिन ये शुभ भी मेरा स्वरूप तो नहीं है। सिद्ध भगवान में तो कोई राग नहीं है। ऐसा पुण्यभाव भी नहीं है और पापभाव भी नहीं है। भगवान की भक्ति, गुरुभक्ति बीच में आती है, तो भी आत्मा तो जाननेवाला है। ऐसे आत्मा को यदि पहिचाने तो फिर राग-द्वेष छूट जाते हैं। आत्मा को पहिचाने तो। लेकिन पहले तो पापभाव छूटे, शुभभाव में गुरु क्या कहते हैं, शास्त्र में क्या आता है, ऐसे भाव आते हैं। लेकिन मुझे आत्मा कैसे मिले? ऐसी भावना करते-करते यदि आत्मा को पहिचाने तो सब राग-द्वेष छूट जाते हैं। भेदज्ञान करे तो।

प्रश्न :- दुःख कैसे मिटे?

समाधान :- वही प्रश्न। सुख मिले यदि आत्मा की जिज्ञासा करे तो। ये सब दुःख ही है, ऐसा निर्णय हो कि ये सब दुःख है। संसार में हरजगह दुःख लगे। यहाँ जो सुख लगता है, धनसे सुख, शरीरसे सुख वह सब सुख लगता है, वह सब एक भी सुख नहीं है। कोई सुख नहीं है। दुःख है। शरीर में रोग आये वह भी दुःख है और शरीर निरोग हो वह भी सुख नहीं है, एक भी सुख नहीं है। अन्दर सब में दुःख लगे और आत्मा में ही सुख है, और कहीं नहीं है। देवलोक के देव में भी सुख नहीं है और चक्रवर्ती के राज में भी सुख नहीं है, ऐसा निर्णय हो। और सुख तो आत्मा में ही है, ऐसा निर्णय हो।

सुख आत्मा में है और आत्मा को पहिचाने और आत्मा ज्ञायक है ऐसे पहिचानकर उसका भेदज्ञान करे, रागसे भिन्न हो और आत्मा की स्वानुभूति हो तो उसे स्वानुभूति में आत्मा का आनन्द प्रगट होता है और आत्मा का सुख प्राप्त होता है। तो ये राग-द्वेषसे भिन्न होकर, राग-द्वेष में ही दुःख है, उससे भिन्न होवे तो उसे आत्मा की स्वानुभूति हो और आत्मा का आनन्द प्रगट होवे। लेकिन वह आत्मा को पहिचाने, उसकी जिज्ञासा करे, उसकी महिमा करे। बाहर की महिमा छूट जाये। बाहर धन में या शरीर में कहीं सुख नहीं है। दुःख तो दुःख है, प्रतिकूलता है वह भी दुःख है, लेकिन चक्रवर्ती का राज हो तो भी वह सुख नहीं है, वह भी दुःख है। देवलोक मिले तो वह भी दुःख है। सब में दुःख लगे तो और आत्मा में सुख है ऐसा निर्णय करे तो आत्मा का सुख मिले।

कितनों को ऐसा लगता है बाहर की प्रतिकूलता मिले वह तो दुःख है, लेकिन पुण्य मिले वह तो सुख है, ऐसा उसे लगे, लेकिन वह भी सुख नहीं है। वह सुख नहीं है। वह तो कल्पना है। चक्रवर्ती के राज में कोई सुख नहीं है। वह तो कल्पना की है कि ये सब सुख है। उसमें भी सुख नहीं है। सुख तो आत्मा में ही है, ऐसा नक्की करे, ऐसा निर्णय हो, आत्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न करे तो आत्मामेंसे सुख हो। नहीं तो अशुभभावसे बचकर शुभभाव होगा। तो उसे अच्छे संयोग मिले, वह सब मिले अर्थात् बाहर का सुख मिले वह सुख नहीं है। अनुकूलता मिले, महल मिले, मकान मिले वह कोई सुख नहीं है। सुख तो आत्मा में है।

पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी के १०८ वें जन्मजयंति महोत्सव प्रसंग पर सुवर्णपुरी सोनगढ़ में धार्मिक कार्यक्रम

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराण के पात्र ऐसे पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी की १०८ वीं जन्मजयंति उनकी साधनाभूमि सुवर्णपुरी में दि.१३-५-२०१९ से दि.१५-५-२०१९ त्रिदिवसीय धार्मिक कार्यक्रम सहित अत्यंत आनंद उल्लासपूर्वक मनाने का निश्चित किया गया है। यह धार्मिक कार्यक्रम सोनगढ़ स्थित गुरु-गौरव होल में मनाया जायेगा।

इस प्रसंग पर प्रातः पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा (आश्रम में), जिनदर्शन तथा पूजन जिनमंदिर में, पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन स्वाध्याय मंदिर में, तत्पश्चात् पूज्य भाईश्री शशीभाई के द्रव्य दृष्टि प्रकाश ग्रंथ पर गुरुगौरव होल में प्रवचन, दोपहर में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन, बादमें पूज्य सोगानीजी का गुणानुवाद गुरुगौरव होल में, रात्रि में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन और गुरुगौरव होल में भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम सहित मनाया जायेगा। दि.१५-५-२०१९ पूज्य सोगानीजी के जन्मजयंती दिन पर पूज्य भाईश्री के प्रवचन के बाद जन्मवधामणा तथा भक्ति की जायेगी। इस प्रसंग में भारतवर्षीय सभी मुमुक्षु भाई-बहनों को पधारने का हार्दिक निमंत्रण है। आनेवाले मुमुक्षुओं को संख्या सहित अपने आने की जानकारी संस्था के कार्यालय में देने की विनंती।

संपर्क : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

आयोजक : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, भावनगर

'स्वानुभूतिप्रकाश' (हिन्दी) का स्वामित्वका विवरण फोर्म नं.४, नियम नं. ८

पत्रका नाम : 'स्वानुभूतिप्रकाश' (हिन्दी)

प्रकाशन स्थल : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

प्रकाशन अवधि : मासिक

मुद्रक : भगवती ऑफसेट, १५/सी बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८०००४

प्रकाशकका नाम : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

संपादकका नाम : हीरालाल जैन, (भारतीय), ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

स्वामित्व : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

मैं, हीरालाल जैन, एतद द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी और विश्वास अनुसार उपरोक्त विवरण सत्य है।

ता. ३१ मार्च, २०१९

हीरालाल जैन

मेनेजिंग ट्रस्टी, श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

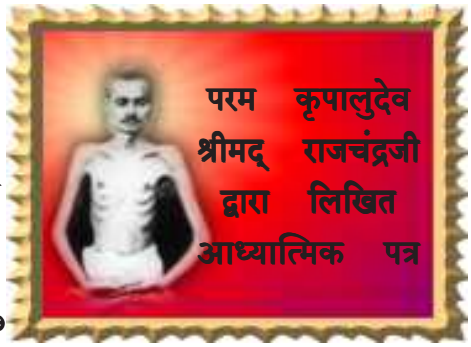

१८४

बंबई, मागसिर सुदी १५, १९४७

सत्स्वरूपको अभेद भक्तिसे नमस्कार।

आपका पत्र कल मिला।

आपके प्रश्न मिले। यथासमय उत्तर लिखूँगा। आधार निमित्त मात्र हूँ। आप निष्ठाको सबल करनेका प्रयत्न करें यह अनुरोध है।

१८५

बंबई, मागसिर वदी ७, शुक्र, १९४७

आज हृदय भर आया है। जिससे विशेष प्रायः कल लिखूँगा। हृदय भर आनेका कारण भी व्यावहारिक नहीं है। सर्वथा निश्चिंत रहनेकी विनती है।

वि. आ. रायचंद।

१८६

बंबई, मागसिर सुदी १५, १९४७

सुज्ञ भाई श्री अंबालाल,

यहाँ आनंदवृत्ति है। जैसे मार्गानुसारी हुआ जाये वैसे प्रयत्न करना यह अनुरोध है।

विशेष क्या लिखना? यह कुछ सूझता नहीं है।

रायचंदके यथायोग्य।

१८७

बंबई, मागसिर वदी ३०, १९४७

प्राप्त हुए सत्स्वरूपको अभेदभावसे अपूर्व समाधिमें स्मरण करता हूँ।

महाभाग्य, शांतमूर्ति, जीवन्मुक्त श्री सोभागभाई,

यहाँ आपकी कृपासे आनन्द है, आप निरन्तर आनन्दमें रहें यह आशिष है।

अन्तिम स्वरूपके समझनेमें, अनुभव करनेमें अल्प भी न्यूनता नहीं रही है। जैसा है वैसा सर्वथा समझमें आया है। सब प्रकारोंका एक देश छोड़कर बाकी सब अनुभवमें आया है। एक देश भी समझमें आनेसे नहीं रहा; परन्तु योग (मन, वचन, काया) से असंग होनेके लिये वनवासकी आवश्यकता है; और ऐसा होनेपर वह देश भी अनुभवमें आ जायेगा, अर्थात् उसीमें रहा जायेगा; परिपूर्ण लोकालोकज्ञान उत्पन्न होगा, और उसे उत्पन्न करनेकी (वैसे) आकांक्षा नहीं रही, फिर भी उत्पन्न कैसे होगा? यह भी आश्चर्यकारक है! परिपूर्ण स्वरूपज्ञान तो उत्पन्न हुआ ही है; और इस समाधिमें से निकलकर लोकालोकदर्शनके प्रति जाना कैसे होगा? यह भी एक मुझे नहीं परन्तु पत्र लिखनेवालेको विकल्प होता है।

कुनबी और कोली जैसी जातिमें भी थोड़े ही वर्षोंमें मार्ग-प्राप्त बहुत पुरुष हो गये हैं। उन महात्माओंकी जनसमुदायको पहचान न होनेके कारण कोई विरला ही उनसे सार्थकता सिद्ध कर सका है। जीवको महात्माके प्रति मोह ही नहीं हुआ, यह कैसी अद्भुत ईश्वरीय नियति है?

वे सब कुछ अन्तिम ज्ञानको प्राप्त नहीं हुए थे, परन्तु उसकी प्राप्ति उनके बहुत समीप थी। ऐसे बहुतसे पुरुषोंके पद इत्यादि यहाँ देखें। ऐसे पुरुषोंके प्रति रोमांच बहुत उल्लसित होता है; और मानो निरन्तर उनकी चरणसेवा ही करते रहें, यह एकमात्र आकांक्षा रहती है। ज्ञानीकी अपेक्षा ऐसे मुमुक्षुओं पर अतिशय उल्लास आता है, इसका कारण यही कि वे निरन्तर ज्ञानीकी चरणसेवा करते हैं; और यही उनका दासत्व उनके प्रति हमारा दासत्व होनेका

(अनुसंधान पृष्ठ सं.९ पर...)